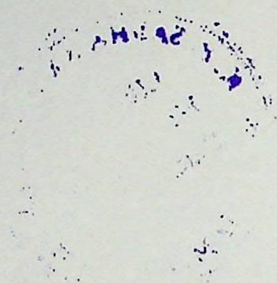
# गीत हो कोई



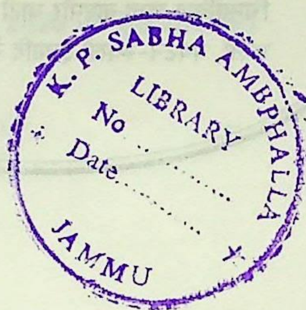
**सुतीक्ष्ण कुमार शर्मा 'आनन्दम्'**

Professor of Hindi
Bemina College Srinagar

साप्ताहिक चंद्रभागा संवाद
402–अम्बफला, जम्मू (तवी)–180005
(जम्मू-कश्मीर)



# गीत हो कोई




सुतीक्षण कुमार शर्मा 'आनन्दम्'

साप्ताहिक चंद्रभागा संवाद
402–अम्बफला, जम्मू ( तवी )-180005
( जम्मू-कश्मीर )

इस संकलन की अनेक कविताओं में '.....'
चिन्हांकित शब्द कश्मीर घाटी के उद्यानों, वृक्षों,
फलों, पर्यटन-स्थलों इत्यादि के नाम हैं।

कवि

मूल्य : पचास रुपए

सर्वाधिकार : सुतीक्ष्ण कुमार शर्मा 'आनन्दम्'
प्रथम संस्करण : दिसंबर 1999
प्रकाशक : श्रीमती सुदर्शन शर्मा
मुद्रक : क्लासिक प्रिंटर्ज़, बड़ी ब्राह्मणां, जम्मू (तवी)।

# सूची

## (1993 से 2000 की कुछ कविताएं)

# समर्पण

मेरे नगर के झरोखों से झांकती
निर्वासन में जन्मी पीढ़ी
तथा
निर्वासित वृद्धा को

# गीत–मन

लौट आओ रे मेरे गीत–मन!
कभी लहक लहक
कभी चहक चहक
झूम झूम कर
कुहुक कुहुक कर
राजहंस–से मानसरोवर पर
विचर विचर कर तरुवर पर
थिरक थिरक कर झन झन झन
करते रहना आनंद–मग्न,
चिर–त्रिषित हुआ लसक–मन!
लौट आओ रे मेरे गीत–मन!

# बदली हवाओं ने चूनर

बदली हवाओं ने चूनर
हिम सरीखे हो गए मौसम
बोलो तो अब करें क्या हम ?

कुहरे ने संभाले पाल
धीवरों ने समेटे जाल
धवलता ने मचाया शोर
मंज़िलें भूल गईं शबनम!

घरो से घर पराए हो गए
सब के सब हमसाए खो गए
छिन्न भये धूप के पल छिन
क्रुद्ध सपने बन गए हमदम!

लिहाफों में सिर दिए सब ने
याद पिछले दिन किए सबने
नदी पर गलते हिम के पुल
तृप तृप टिप टिप छम छमा छम!

नीड़ों में छिप रहे पांखी
गुम सुम से बंद किए आंखी
धान के खेतों की बहार
लखने को पल रहा है दम!

# गीत हो कोई

सूर्यमुखी सब त्राण पाएं,
गीत हो कोई !

अखरोटी हवाओं का ह्रास
नित्य झेलता है उच्छवास
सूने घरौन्दे बुलबुलों के
व्याध के हाथों पड़े उदास!
आहत–भये मन प्राण पाएं,
गीत हो कोई !
सूर्यमुखी सब त्राण पाएं,
गीत हो कोई !

अवरुद्ध कण्ठों की गुहार
व्यथा–कथा का नमाना भार
कित वह छत जानी पहचानी
कित रूखी–सूखी का खुमार !
खोया हुआ सब मान पाएं,
गीत हो कोई !
सूर्यमुखी सब त्राण पाएं,
गीत हो कोई !

पल्लवों का सुबासित नर्तन

लोल लहरियों का मधु–स्पंदन
आह, यह स्मृतियों का अम्बार
खग–ध्वनियों से हंसता आंगन !
मिल कर बैठें सब गान गाएं,
गीत हो कोई !
सूर्यमुखी सब त्राण पाएं,
गीत हो कोई !

## छिप गया गांव

कोहरे में छिप गया गांव !

मानी बूढ़ों का चौगान
शिशुओं से खिलता मैदान
जिस पर नाच रही थी सदी
बहती थी सुधियों की नदी
खोज रहा है अपने पांव!
कोहरे में छिप गया गांव!

वे चौपायों के काफिले
पक्षियों के मोहक सिलसिले
जिनके साज़ थे अति चंचल
गूंजते रहते पल प्रतिपल
गंवा रहे हैं अपने ठांव!
कोहरे में छिप गया गांव!

रेशमी हवाओं का स्पर्श
हर्षोल्लास का उत्कर्ष
जिनके प्रिय–चाव थे परिमल
मनोहार परागमय मखमल
भूल रहे हैं अपने नांव!
कोहरे में छिप गया गांव!

मुंडेर पर की दूरदृष्टि
क्षितिज तक फैली छैल–सृष्टि
जिस का पार था अपरिमित
समाहित किए सर्व का हित
सुन रही निरंतर कांव कांव!
कोहरे में छिप गया गांव!

पनघट का चंचल चपल स्वर
नूपुर–ध्वनियों का सरल घर
जिसके गजरे थे पनिहारिन
जिसके बूंदे नाचते पल छिन
सकुचा रहे हैं केलि–दांव!
कोहरे में छिप गया गांव।

# दीवानी आंखें

किसके हेत हुईं यायावर
दीवानीं दीवानीं आंखें ?

रह रह आतीं याद निरंतर
नौका में टहलतीं बातें,
उदे सूर्य का परस पाकर
गरिमायुत •मुस्कातीं प्रातें!
हर मुखड़ा दा असली असली
पंकज सी मनभातीं आंखें!
किसके हेत हुईं यायावर
दीवानीं दीवानीं आंखें?

तुम थे, मैं था औ' था बचपन
संग सभी के महका यौवन,
किए रहा पांखी–सी दलीलें
देख सकूंगा सारा नंदन!
शाही तूतों की शाखों पर
अलिकुल की अनजानी आंखें!
किसके हेत हुईं यायावर
दीवानीं दीवानीं आंखें?

परिमहल की प्राचीरों पर
मनचाहे तेरे नाम लिखे,
सुदूर तलक डल के इस पार
लहलह करते बादाम दिखे!
आवाज़ें दीं ऊंची ऊंची
नहीं मिलीं चिर–ठानीं आंखें!
किसके हेत हुईं यायावर
दीवानीं दीवानीं आंखें?

# बातों पर न जाएं

आओ मित्र, सुबह के गीत गाएं,
पुच्छल तारे की बातों पर न जाएं!

यह समय यों ही खोने का नहीं,
बैठ कर व्यर्थ के आंसू रोने का नहीं;
हर निशा में प्रात के स्वर पलते
उन्हीं की खोज करने हम निकल जाएं!
आओ मित्र, सुबह के गीत गाएं
पुच्छल तारे की बातों पर न जाएं!

बीते कल जो हुआ सो हो गया
कितना कुछ मिल गया, बहुत कुछ खो गया;
हर खोने में है पाने की गति
हिलमिल कर जीने का संकल्प जगाएं!
आओ मित्र सुबह के गीत गाएं
पुच्छल तारे की बातों पर न जाएं!

कस कर कलियां कमल हर सांझ को
है बांध लेता रस-लोभी भंवर को;
वहीं तक तो नहीं अस्त जीवन का
मकरंद की महक को तो समझ जाएं!

आओ मित्र, सुबह के गीत गाएं
पुच्छल तारे की बातों पर न जाएं!

हर पल तम का घर, हर पल इक आस
हर पल इक हास है, हर पल इक उजास;
ज्ञान और विज्ञान की दृष्टि बरतें
दूर दूर तलक सहरा को महकाएं!
आओ मित्र, सुबह के गीत गाएं
पुच्छल तारे की बातों पर न जाएं!

बहे है जल तो बहने दो कल कल
आती है बाढ़ तो आने दो छल छल;
पुनरावृत्ति है यह, कहे इतिहास
क्यों न आज हम तुम वज्र–बांध बन जाएं?
आओ मित्र, सुबह के गीत गाएं
पुच्छल तारे की बातों पर न जाएं!

क्रुद्ध हुए हैं मौसम तो क्या हुआ
अवरुद्ध हो गए हैं कंठ तो क्या हुआ;
जब दूरी पर दीप–प्रभा–बल से
कोई खड़ा रहा नदी में पर न मुआ
आओ हम तुम आत्म–कुंड जगमगाएं!
आओ मित्र, सुबह के गीत गाएं
पुच्छल तारे की बातों पर न जाएं!

---

*''बातों पर न जाएं''– तब की रचना है जब त्राहि त्राहि की जैसी चर्चा थी कि धूमकेतु की गति से पृथ्वी पर विनाश लीला होने की संभावनाएं पुष्ट हैं।*

# तीन कुंडलिया

राहें भूल जाते हैं, राहों चलते लोग
जाने कौन कारण से, फूल मसलते लोग
फूल मसलते लोग, तनिक नहीं हैं अघाते
बींध कर कुंजों को, गर्भ–युति से इतराते
कब तक होगी हानि, कलियां भर रहीं आहें
इस जगत में हर दिन, उलझ पुलझ रहीं राहें। 1.

रात को है नींद नहीं, दिऩ को नहीं करार
'आनंदम्' इस नगर में, वर्षा मूसलधार
वर्षा मूसलधार, जाने कब क्या दिखलाए
लता–कुंजित जग यह, खामोश नगर कहलाए
सकल नद गर्वीले, सरिताएं भी निष्णात
घर घर में रट यही, कैसे बीतें दिन सात। 2.

सुनते रहते लोग हैं, विस्फोटक आवाज़
भूल रहे बाज़ार को, चौराहों के साज़
चौराहों के साज़, गले में डाले बाहें
सुलभ करने निकले, लोग अनपूरी चाहें
धन्वंतरी* हों जब, तक्षक–दीना धन चुनते
लोग रह जाते तब, अनुगूंज भय की सुनते। 3.

---

* *अर्जुन के पौत्र, अभिमन्यू तथा उत्तरा के पुत्र और 'कौरव पांडव' के साम्राज्य के स्व राजा परीक्षित को डसने जा रहे मानव–भेष धारी नाग 'तक्षक' और 'तक्षक' के डसे बचाने के लिए जा रहे वैद्य धन्वंतरी की मार्ग में भेंट हो गई। बारी बारी दोनों ने एक वृक्ष डस कर राख करने और वैधिकी द्वारा हरा करने की अपनी शक्तियों का प्रमाण दिया। त 'तक्षक' ने धन्वंतरी को इसी वृक्ष के नीचे गढ़े धन का लोभ दे कर उसे खोदने में व्यस्त दिया और इसी बीच स्वयम् वहां से निकल कर राजा परीक्षित को डस लिया।*

# अनुगीत–मन

## 25 अक्तूबर 1993

(सायंकालीन टी.वी. समाचार देखते ही)

निरंतर चल रहे कर्फ्यू में मिली ढील,
अपने ही घरों में बंद बंदी
टूटे बांध से उछलते जल की नांईं
निकल आए सड़कों चौराहों पर,
बेतरतीब आपाधापी की दौड़ में
सिमटते–सिकुड़ते फैले
ऊहापोह के दायरे।

रहमत ने अपने ठेले पर सजाई
कुछ दिन पुरानी तरकारी,
लोग टूट पड़े ऐसे
जैसे हो अभी अभी की;
दूध वाला अब्दुल्ला
दौड़ रहा था केन उठाए,
सुमन कौल
राशन के बंद हाट के आगे
जोह रहा था आटा,
लम्बी सफेद दाड़ी वाला अंधा भिखारी

ज़ोर ज़ोर से टेकता अपनी लाठी
चिल्ला रहा था ऊंचे स्वर में
जाने क्या कुछ
किंतु सुनने वाला
कोई नहीं था।

भागी भागी
हांपती फूलां ने
दिया हाथ आटो–रिक्शा को
कि जैसे
है कोई उसका बीमार बहुत
देखने जाना है उसको
अथवा कर्फ्यू से बिछुड़ गई है
सब अपनों से
तुरंत पहुंचना है घर को।

दो भाइयों ने उठाया 'शट्टर'
दुकान का अपनी
एक निपटने लगा
सिंध से उमंडते ग्राहकों से,
एक देखने लगा घड़ी
कि ढील मिली है जो
अब बंद हुई कि कब हुई,
और भागते तांगे की एक तरफ
खड़े सड़क किनारे
दीख रहे थे कुछ बच्चे
गलबाहें डाले
थामे एक दूसरे को,
चेहरों पर मुस्कानों के लच्छे

निर्लेप और बेबाक
और सोच रहे थे 'कर्फ्यू'!

मुझे लगा जैसे
मैं ही बंद हुआ था
'खाने' में कबूतर–सा।
अथवा
हो अनभिज्ञ
कि पापा को कचोट रही है
उनकी अपनी ही कोई खिझाती भूल,
अपनी अबोध अवस्था में
भोग रहा था ढांट
स्कूली–वर्दी की निक्कर मांगने पर
या
कान पकड़े बना हुआ था मुर्गा
अपने शिक्षक के आदेश पर
कि जैसे
की हो शरारत और किसी ने
गाज गिरी हो मुझ पर,
और सोच रहा था:
पापा उठ कर जाएं
चाए पीने मम्मी के पास
या इस शिक्षक की घंटी
बीत जाए फराटे–सी।

–दो–

ढील के इन क्षणों में
सोचा मैंने सहसा
आ जाए कहीं से 'फोकस' में

कालेज का आंगन
या विश्वविद्यालय का पुस्तकालय
और देख पाऊं :
'चमन लाल सप्रू' को चिंतन करते,
'रतनलाल शांत' को करते मनन,
'हरिकृष्ण कौल' को होगी
नई कहानी की तलाश,
'अग्निशेखर' भी कुछ वाचता होगा
संतोषी सोचता होगा कोई कविता
किंतु भूल गया था मैं
कि आज
वहां तो सब जगह ताला होगा,
'डॉ निज़ाम-उद्दीन' और 'अयूब खान'
होंगे तरसते
देखने के लिए एक दूसरे को,
'मोहन निराश' को होगी न मिलती
सुध 'शशिशेखर' की
और भी होंगे
जाने कहां कहां।

आह, भूल गया था मैं :
घाटी के हर कोने में
छाया दमदार सन्नाटा होगा
और
सन्नाटे के हर पल पर
बंदूकों का पहरा होगा।

—तीन—

लेकिन न जाने कब
पापा उठ कर जाएंगे
मम्मी के पास चाए पीने,
बीत जाएगी
शिक्षक की घंटी फराटे सी,
झील 'डल' का गदलापन होगा दूर,
तेज़ हवाएं न डुबाएंगी कश्तियां,
तैरते हुए बागीचे
कबूतर खाने की गुटरगू
गूंजे गी हर तरफ,
वितस्ता में मचलेगी नौका–दौड़,
लेंगे सब आज़ादी की सांस
बुलबलें जीवन के गीत गाएंगी,
डोंगे और हाऊसबोट
सुनाएंगे फूलों वाली के नगमे
दोहराएंगे केसर का इतिहास
और मैं करूंगा याद
अपने लड़कपन के दिन
'प्रताप–पार्क' के वुस्ता की दुकान से
ले कर किराये की साईकल
'हारवन' तक का सफर
जो याद है अब तक।

---

*'........' चिन्हांकित व्यक्ति कश्मीर घाटी के नामी प्रोफेसर, कवि, लेखक इत्यादि हैं।'*

*— कवि*

# कहा एक सुविधा ने

सब कुछ होते हुए
अपनों में रहते हुए
बहुत कठिन होता है
नई जगह पर टिक पाना।

यहां तो लोग
ज़रूरत पड़ने पर
अपने ही मकान में
कमरा बदलते
दुविधाओं में फंस जाते हैं
कहा एक सुविधा ने
अपने लिए
किराए के नए मकान में
जाने की उलझन में।

पाम्पुरी हैं
सोपुरी हैं
'अच्छा-बल' के हैं
'टंकी-कदल' के हैं
'मटन' के हैं
'कंगन' के हैं
न जाने कौन कौन

किस किस कोन के हैं ?

भले ही सब हैं नए यहां
तो भी हैं अपने,
भाषा है अपनी
संस्कार हैं अपने
रहन–सहन भी है अपना।

आए हैं स्वेच्छा से
सुन–सुन कर
गढ़म्म ..............
और देख परख कर
धुएं का दम
अथवा लाए गए हैं
किंतु सरल नहीं है
इस जग में हिलमिल जाना
कहा एक सुविधा ने
शिविर के तम्बू में
जाने की उलझन में।

पानी की बारी को
सांझे नल पर खड़े खड़े,
राशन के बंटवारे की
पांती में पड़े पड़े,
जपते किरोसिन की माला
संभव है :
सुनना पड़े गाली कहीं से
सहना पड़े बोली उलटी–पुलटी
देखनी पड़ें आंखें बेलिहाज़

झेलना पड़े धौंस अनायास ?
शिविर–स्थल के आस–पास
ऊबड़–खाबड़ खड्डों में
झाड़–झंखार के जंगल में
गीद बहुत हैं
बच बच कर जिनसे
पड़ता है निपटना
कहा एक सुविधा ने
ठिठुराते शिशिर की धूप में
बैठने की उलझन में।

# निर्वासित वृद्धा

अपने कैम्प के करीब
हर सुबह
फिरन में लिपटी
एक वृद्धा की आंखें
नापा करती हैं
खेतों के आस पास
कच्ची पक्की राहों के आर पार
उगे 'सफेदों' के कद,
आंका करती है अम्बर का रंग,
जब तक भीग जाती हैं पलकें
भारी हो जाता है मन,
वह अपनी तर्जनी से
होटों की फरकन के साथ
लिख देती है हवा में :
'पीर–पंचाल' के पार
'सीर, कांनली–गुंड, हफ्तनाड़
देवदार और चिनार'
और सोचने लगती है अवाक–
भूल क्यों रहा है 'अखरोट',
पहाड़ का चशमा,

याद क्यों नहीं आता 'गोशा'
'अम्बरी' सेब का स्वाद
'ऐशमुकाम' और
'कोकरनाग' के बीच की दूरी
जो कम नहीं है किसी तरह भी
मायके और ससुराल की दूरी से
और करती है याद
'मटन' के कुण्ड में
मछलियों की रौनक,
अपनी सहेलियों
सकीना और बानो के साथ
तलाश में सोने की मछली की
बिताए दिन,
सलामा के टांगे की सवारी,
वो बेबाक मस्ती पकड़ती
बहन परमेश्वरी के साथ अलहड़ जवानी
और खोजती है मन के कैलंडर में
अपनी जन्म तिथि,
टटोलती है जन्म स्थान ।

आ जाते हैं तब
सोहनू और मोहनू
हंसते खिलते दांत निकालते,
चमनी थाम लेती है उसकी बांह
और वह
दांतों की चमक में उनकी,
चमनी की कोमल पकड़ में
देखने लगती है अपना अतीत :

बुखारी के पास
'समावार' की महक में रसी–बसी
कहवे की मस्ती
और सहसा
'फिरण' से निकाल कर देखती है
विस्फोट में मारी गई बहू का फोटो
शाम के खाने के लिए किरयाना लेने गई थी जो,
गोली का निशाना बने बेटे का चित्र
जो लौट रहा था
बीमार हबीबा को उसके घर पहुंचा कर,
बहाती है आंसू
जिन्हें देख कर सोहनू और मोहनू
भूल जाते हैं
अपनी मां की रही सही याद
पिता की स्मृति,
डूब जाते हैं गहरे
वृद्धा दादी के गम में
और सहसा
उसके अतीत के साथ
करने लगते हैं याद :
गलियों में अपनी उछल–कूद
सड़कों पर रेल पेल
जब देर शाम को
सुनाई देतीं थीं आवाज़ें
खाना खाने के लिए बुलातीं,
काफी होती हैं जो
मां की याद दिलाने के लिए

पिता का स्मरण कराने के लिए
जब बूढ़ी दादी
बाहों में भर लेती है उनको
सांत्वनाओं से भर देती है हर क्षण को
और धीरे धीरे
लौटने लगती है कैम्प की ओर।

## यहां नावें नहीं चलतीं

नहर किनारे
तीन निर्वासित महिलाएं।

एक धो रही थी बर्तन
दूसरी कपड़े खंगाल रही थी
और तीसरी
खड़ी थी संगत के लिए।

बतिया रही थीं तीनों
अपने अपने घर की बातें,
कर रहीं थीं याद
'जेहलम' के एक तीर पर
'राजमहल',
दूसरे पर 'गणपतयार'
और रात के समय
पानी में दूर गहरे तक
लट्टुओं की ज्योति से
जगमगाती लहराती इनकी छवि,
सोच रही थीं
'हब्बा-क़दल' पुल के पास बैठ
ऊंचे किनारों की परात में
'शाहीतूत' बेचते रजबा के बारे में :

कौन जाने
कहां होगा वह
कैसा होगा
होगा भी कि नहीं ?

सोच रहीं थीं
घाट पर कपड़े धोने के दिन
कि इसी बीच
पहुंच गया वहां नन्हा काका
देखता नहर की गति सहसा
खड़ा रहा कुछ पल
और बोला :
मां !
यहां नहर में बत्तखें नहीं तिरतीं
यहां नहर में नावें नहीं चलतीं ?

स्तब्ध हो उठी मां,
उत्तर की तलाश करते
छूट गई उसके हाथ से थाली
बह गई दूर तक
जब नन्हा काका
पहले तो बजाता रहा तालियां
हंसता रहा खुल कर
'मेरी नाव, मेरी नाव' !
फिर अवाक देखता बोल उठा :
'मां !
थाली डूब गई !'

# *अब तक तब तक*

बहुत चावों से मैंने एक घर बनाया था
सुख चैन के सपनों से इसे सजाया संवारा था।

इसने दिया मुझे प्यार
मैंने पहनाए इसे फूलों के हार
और
एक साथ जीने का वचन दिया था।

आज रास्तों के टेढ़े मेढ़े मोड़ों से घबरा कर
चारों और उग आए झाड़ झंखारों से पगला कर
उसे अकेला छोड़ आया हूं।

वह दे रहा है मुझे आवाज़ें
एक साथ जीने का वचन करा रहा है याद
लेकिन मैं
अपने कानों में अंगुलियां ठूंसे
आंखों को लगाए आगे भाग रहा हूं,
वह चिल्ला रहा है
ऊंचे ऊंचे बुला रहा है:
मैं घर हूं
तुम्हारा घर हूं,

तुम चले जाओगे
मैं अनाथ हो जाऊंगा
घर, घर न रहूंगा!

किंतु मैं
कर रहा हूं सब अनसुना
और कह रहा हूं:
मैं कहीं और अपना घर बनाऊंगा
अब तक तू था
तब तक वह होगा
किंतु कहते कहते
मन के किसी कोने में
लुका–छिपा एक भारीपन जाग रहा है।

## गीत वे भी गाएंगे

बहुत कुछ देखा
बहुत कुछ सहा
परिवर्तन पर परिवर्तन
मौसम हो गए क्रुद्ध
कण्ठ हो गए अवरुद्ध
बदले स्वर
किंतु रुका जाता नहीं
कविता अब भी ठाठें मारती है
इठलाती, मचलती फलांगें भरती है
गान करती है प्यार की फुहारों का
गेंदे  और गुलाब की कतारों का
भंवरों की रुन–झुन का
किंतु रंगों पर रक्त की छाया
गुंझार में टीस
छीना झपटी
अनचाहे बलात्कार !

यही कुछ दिखाई देता है
आबशारों में सुनाई देता है .
नौकाओं की गति बोझिल बोझिल ,
लहरों के हावभाव भारी भारी
हर कोई एक दूसरे से ओझल,

लोरियों में सिसकियां
गीतों में कसक
वही बिरहा के भाव
वही मिलन की ललक
किंतु विरोधाभासों के डेरे
भ्रांतियों के घेरे,
कुहरा अंधाधुंध।

ठंडी लगती सूर्य की आग
नदियों में ठिठुरी हलचल,
पंखों में चंचु दाबे
बामों पर पक्षी
होते गठरी गठरी,
कुछ बिखर गए
तकते पीछे अपने नीडों को
मैदानों में उतर गए,
देते धुंध को गालियां
ठिठुरन को श्राप,
करते विलाप
कि बन गईं आदर्श–असमर्थताएं
विषम अभिशाप
भोगने को दे गईं
विक्षिप्तताएं
और ..............।

क्या इसी को कहते हैं नियति,
क्या यही कहाती है
धर्म की दिनचर्या ?
यहां सब ऐसे ही जीते हैं
यातनाओं का अपच पचाते हैं
व्यर्थ अब अव्यर्थ होता जा रहा

प्रतक्ष और अप्रतक्ष में
मानव का लहू चोता जा रहा।

यह समय
खोए हुए के विलाप का नहीं,
भोगे हुए
संताप के स्वर ढोने का नहीं,
बह गए जो जेहलम में
डूब गए जो डल की तहों में
उनके लिए अब
प्रार्थना के सिवा क्या हो सकता है,
घाव जो दिल में लगे हैं
उपचार उनके हों न हों
पर देखना है :
जो इस युग में पैदा हुए
ऊहापोह में पले औ' बड़े हुए,
देख रहे हैं बवंडर
भोग रहे हैं बवंडर
उनका क्या होगा,
वे कौन सा पथ पाएंगे
वे कौन सा दीप जगाएंगे ?
गीत वे भी गाएंगे
कविता वे भी पढ़ेंगे
पर उन्हें शायद ही
वे गेंदा और गुलाब दिखाई दें
भंवरों की रुनझुन सुनाई दे
जिसे मैंने देखा और सुना है
जिसे तुमने देखा और सुना है।

# अब तो यह भी याद नहीं

आंखें
जो देखा करती थीं
चहकती बुलबुलों की गति,
मापा करती थीं खुला आकाश
छिन गई हैं,
समा गए हैं उनमें अब
हिंदोलित करते दहलाते
यदा–कदा के भूकम्प,
कम्पा देते हैं जो
सारिकाओं के मन–प्राण,
याद कर गीत तोते के
छटपटाती हैं जो
एक पल के लिए इतिहास को,
जिसमें हैं उनकी क्रीड़ाओं के
कल केलि करते सतरंगे पन्ने।

कैसे हो गया यह सब
क्यों हो गया
किया किसने
(है यह किसका कर्म) ?

मैं चाहता हूं :
लौटा दो मुझे मेरे नयन

कि देख  सकूं शंकराचार्य–मंदिर से
झील डल की बहार,
गेह–कश्तियों की कतार,
'चिनार' और 'सफेदे' के झुंड,
दौड़ाऊं दूर दूर तक दृष्टि
समा लूं चौगिर्द फैला
मेरे दोस्तों का
अपने भाइयों का
ऊंची नीची इमारतों वाला
हरा भरा शहर रसीला
गूंजता मासूम वाणियों की भीड़ से।

अली मोहम्मद मेरा सहपाठी
हबीब–उल्ला अपना हम सफर
बैठे होंगे कहीं
इस आयु में स्मृतियों को संजोते,
सहेज रहे होंगे बस्ते अपने
मलेशिया की स्कूली–वर्दी पहने,
प्रार्थना की घंटी में ला रहे होंगे
लबों पे
तमन्ना को दूआ बना कर,
कर रहे होंगे आरजू
जिंदगी को
शमां की सूरत बनाने की,
या सोच रहे होंगे
'गोल बाग' में बैठे :
वो नहीं आया

वो क्यों नहीं आया ?

मैं चाहता हूं
लौटा दो मुझे मेरी दृष्टि,
'हजूरी–परेड' में
फुटबाल मैच देखती
भीड़ में हो कर शामिल
बड़ी बड़ी टांगों में से आगे बढ़ कर
मुल्क राज आनन्द के 'लास्ट–चाइल्ड' सा
खेल में शामिल होना चाहता हूं
और पूर्ति पर मैच की
हिल मिल कर हंसती खिलती भीड़ में
'महाराज बाज़ार' से होता
पहुंच कर अमीरा–कदल चौक में
मुस्काना चाहता हूं,
एक सधे हुए खिलाड़ी–सा
बैठ कर हनुमान–घाट पर
वितस्ता के प्रवाह का सुख लेना चाहता हूं
जैसे वह मैच–
अली मोहम्मद ने जीता है,
हबीब उल्ला ने जीता है,
मैंने जीता है।

मैं चाहता हूं
लौटा दो मेरी सोच,
रीगल–चौक वाले वुस्ता से
ले कर किराए की साईकल
मस्त भंवरे–सा
मैं हमेशा की तरह

'गांदरबल' तक
अकेला ही घूमना चाहता हूं,
या फिर 'डल' के किनारे किनारे
सरल सपाट सड़क से होता
चश्मा शाही, निशात बाग,
शालामार और हारवन जाना चाहता हूं,
उछलते नाचते फवारों–सा
मचलना और मंडराना चाहता हूं,
कल–कल छल–छल–सा
बहता बहता
आते जाते हर राही को
हबीब उल्ला का
अली मोहम्मद का
और अपना
सलाम पहुंचाना चाहता हूं।

हा।
मगर मुझ को
अब तो यह भी याद नहीं रहा
'निशात' पहले है या 'शालामार' पहले।

# बिकल कथा का आग्रह

रे मौसम
तुम कैसे बदल गए,
देखते ही देखते
कुछ फूल पत्ते यहां गिरे
कुछ वहां गिरे
कुछ न जाने कहां खो गए,
और भी होंगे
जो खिलने से पहले
शगूफों का मुंह सोचते रह गए।

कैसे लिखूं पाती
कौन पता दे कुछ का
कौन पढ़ेगा मेरे शब्द
क्या कहूं
लिखे किसके लिए,
अंतर्द्वन्द्व की चौखट में
कोई दिखाई नहीं देता
कोई सुझाई नहीं देता।

मौन में डूबे हुए गान
हैं ढूंड रहे सम्मान
पर मिल नहीं रहा त्राण।

कौन जाने
मौन मुखर होगा कब
कब कहेगा कोई आ कर
सब आगे पीछे की सुधियां,
कब कहां क्या कुछ
झेलते और सहते रह गए।

कुछ ही बरस की कथा है
मानो बरसों बीत गए,
होटों पर रहते थे स्वर जिनके
लगता है सब गीत गए।

मेरे शैशव से संलग्न
पीर–पंचाल के तुंग–श्रृंग पर
पुरानी सुरंग के उस पार
लॉरी–मार्ग के आस पास
जगह जगह फैलीं हिम शिलाओं की
नयनाभिराम स्मृतियां हैं,
दूर यौवन की दहलीज़ तक
जवाहर–टनल के
स्निग्ध शीतल पवन–संग
बीता हुआ कल
भीना भीना एक संवाद है।

झकझोरतीं करतीं हिंदोलित
शोर मचातीं तेज़ हवाओं में घिरे
'अप्पर–मुण्डा' की क्या कहूं,
'लोअर–मुण्डा' की गरिमा,
क़ाज़ी–गुंड की छवि

खोजते मन के नयन
झेलते विछोह की घुटन,
तलाशते आगे
अच्छाबल के चौक से
चिनारों की छाया,
शोपैयां के महकते सेब,
अवंतीपुरा के मोड़,
छेनी और हथोड़े की गति पर
गढ़ते पत्थर
नज़र की सीध में अंगुलियों के पोर,
'चट्‌ठुपुरा' के छोर,
पांपुरी केसर की
क्यारियों की टोह
वितस्ता के किनारे किनारे
आह !
बिकल–कथा का रह आग्रह गए।

# कश्यप की समाधि-सा

ताल में पानी खड़ा था चुपचाप
देखता
कमल दलों संग करतीं अठखेलियां
लोल लहरियां चंचल चंचल,
अंकवारता
गिरिश्रृंग छायाएं
आसपास उगे तरुओं के प्रतिबिंब
खूब इतराता था।

बत्तखें करती थीं विहार
आते जाते बटोही पाते थे मनोरंजन,
सूर्य चांद सितारे
संवारते थे अपना रूप–अनूप
गहराई में उतर कर इसकी,
मानो गर्भ में इसके
दर्पण हो जड़ा हुआ।

पर आह !
किसका फैंका पत्थर
तल तक छेद गया
विह्वल हो उठा मन

डुब डुब डुब,
कुछ कह न सका गुमसुम
और सारे का सारा सौम्य
इत उत छितरा गया,
बौरा गईं बत्तखें
गुमराह हुई काई
गुमराह हुए तरु,
भगदड़ मच गई लोल लहरियों में
हिल गया सब कुछ
हिल गए सूर्य चांद सितारे।




आह !
यह थल–तल की हलचल
आह !
यह अवांछित छल–बल,
गदला गया सब कुछ
गदला गईं दिशाएं
तब तक के लिए
जब तक न कोई
बंद करता कंकरों की बौछार,
ताल में पानी
खड़ा नहीं हो जाता चुपचाप
कश्यप की समाधि–सा।

## निर्वासन का अर्थ

बंधु !
तुम बहुत चिल्लाए
बहुत उल्लाए
जब मिला तुम्हें आदेश
घर से दूर
अवांछित जगह पर स्थानांतरण का,
अपशब्दों की वर्षा से
नहला दिया तुमने
अपने अधिकारियों को।

तुम बहुत झल्लाए
बौखलाए बहुत
नई जगह पर जा कर,
आहत सिंह की नांईं
ढूंढने लगे सौहार्द तहां के जन–गण में,
मेमनों की नांईं हिलाने लगें पूंछ,
बैठने लगे अवाक
सकुचीले–से
तकते मुस्काते
प्रथम कक्षा में प्रविष्ट शिशु की नांईं
हिलमिल कर जीने का करने लगे अभ्यास,
वहां के चौगिर्दों से भी करने लगे आकांक्षाएं

एक याचक की तरह मन ही मन जपने लगे
'दे दाता के नाम !'

मौन हो गए तुम्हारे अपने घर के तौर,
बदल गई पूरी चाल
ईर्षित घुट गई तुम्हारे दम्भ की लीला।

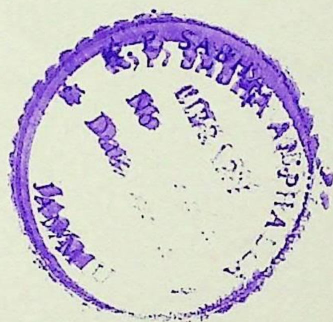
क्या तब भी नहीं समझे तुम
निर्वासन किसे कहते हैं ?

तुम खुश थे कि भेज सके पुत्र को
बड़े नगर में पढ़ने के लिए,
तुम खुश थे बहुत कि चला गया वह
अपने भविष्य की उज्जवलता के लिए
किंतु रहते थे चिंतित
जब न पाते थे चिर तक उसका संदेश,
सोचा करते थे दिन रैन:
न जाने स्वास्थ उसका है कैसा
न जाने वह पाता है भोजन कैसा
न जाने उसे आती है नींद कैसी,
घर में रहता था तो सब चलता था
आंधी में भी दीप जलता था।
क्या तब भी नहीं समझे तुम
निर्वासन किसे कहते हैं ?

जब पाते थे पुत्र की पाती :
पापा !
आपकी बहुत याद आती है,
मम्मी की आती है याद बहुत
आती है याद बहन
अंगना का वह पेड़

और उसमें चिड़ियों की फुदकन
कोयल के अण्डे सेता कौए का नीड़
सब बहुत याद हैं,
और पढ़ते थे आगे:
पापा!
कल स्वप्न में
अपने घर की छत से
दूर तलक देख रहा था मैं
जहां से उदता सूर्य
दिखाई देता है पूरा!
क्या तब भी नहीं समझे तुम
निर्वासन किसे कहते हैं ?

बंधु !
यदि सोचो तुम :
निश्चित फल के बंधन में
सबल निश्चय से
आगे बढ़ते जाने में
और
किसी मोह अथवा फल के बंधन में
पीछे तकते रहने में भी
रहती है एक तरह से
पीड़ा निर्वासन की!
क्या अब भी न समझोगे तुम
निर्वासन किसे कहते हैं ?



## सुतीक्ष्ण कुमार शर्मा 'आनंदम' की कृतियां

| | |
|---|---|
| तिनके और तिनके (हास्य व्यंग्य) | सितम्बर 1966 |
| देखतीं आकाश आंखें (कविता संग्रह) | दीपावली 1968 |
| हम हैं बालक भारती (बाल कविताएं) | दिसम्बर 1970 |
| काम्प–काम्प रहा चक्र–बन्धु (संगीत रूपक संग्रह) | अक्तूबर 1972 |
| नौका का इतिहास (पुरस्कृत कविता संग्रह) | जनवरी 1974 |
| सांझे मंच पर (रंग नाटक) | जनवरी 1975 |
| एलबेट्रास की हत्या (कालरिज के 'राइम आफ एंशिएंट मैरिनर' का रेडियो नाट्य रूपांतर) | जनवरी 1977 |
| आखरी पन्ने (पुरस्कृत नाटक संग्रह) | जुलाई 1981 |
| कमल–पत्र पर डोलता जल–कण (कविता संग्रह) | मार्च 1984 |
| कि वे बोलें (कविता संग्रह) | जून 1991 |
| बाम के झरोखे से (प्रारम्भिक कविताएं) | अगस्त 1992 |
| ताकन लागे काग (रंग नाटक संग्रह) | मार्च 1995 |
| समर्पित आलाप (कविता) | अप्रैल 1999 |
| गीत हो कोई (कविता संग्रह) | दिसंबर ~~नवंबर~~ 1999 |

**साप्ताहिक चंद्रभागा संवाद**

402–अम्बफला, जम्मू (तवी) 180 005

(जम्मू–कश्मीर)